महात्मा गांधी और सामाजिक न्याय

प्राप्तिः 16.01.26
स्वीकृतः 07.03.26

16

रेखा
शोधार्थी, (इतिहास विभाग)
डॉ. के.एन. मोदी महाविद्यालय,
निवायी, राजस्थान
ईमेलः *rekhaphal902@gmail.com*

डॉ. उत्कर्ष कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, (इतिहास विभाग)
डॉ. के.एन. मोदी महाविद्यालय,
निवायी, राजस्थान

सारांश

महात्मा गांधी का सामाजिक न्याय का विचार सिर्फ कानूनी या संस्थागत ढांचों पर आधारित न होकर नैतिक समानता, मानवीय गरिमा और नैतिक जीवन में निहित था। गांधी के लिए, सच्चा सामाजिक न्याय केवल अहिंसा, सत्य और व्यक्तिगत और सामूहिक चेतना के बदलाव से ही हासिल किया जा सकता था। उन्होंने छुआछूत, जातिगत भेदभाव, लैंगिक असमानता और आर्थिक शोषण जैसी सामाजिक बुराइयों का कड़ा विरोध किया, और रचनात्मक कार्यक्रमों और सामाजिक सुधार के जरिए हाशिए पर पड़े लोगों के उत्थान के लिए काम किया। गांधी की ट्रस्टीशिप की अवधारणा ने समाज के प्रति अमीरों की नैतिक जिम्मेदारी पर जोर देकर आर्थिक न्याय सुनिष्चित करने की कोशिश की। यह एब्स्ट्रैक्ट गांधी के सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण की समीक्षा करता है, प्रमुख विद्वानों की व्याख्याओं और आलोचनाओं की जाँच करता है – विशेष रूप से दलित और नारीवादी दृष्टिकोण से – और आधुनिक समाज में असमानता, सामाजिक बहिष्कार और मानवाधिकारों के मुद्दों को संबोधित करने में गांधीवादी सिद्धांतों की समकालीन प्रासंगिकता का मूल्यांकन करता है

प्रस्तावना

शुरू से ही, न्याय का कॉन्सेप्ट इंसानी सोच पर हावी रहा है। महान दार्शनिक अरस्तू के अनुसार, इंसान एक राजनीतिक–सामाजिक प्राणी है। वह कह रहे थे कि इंसानों में हमेशा कई जुड़े हुए रिश्तों वाले समुदाय में रहने की प्रवृत्ति होती है। इसके अलावा, अकेले रहना किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए एक बदनसीबी थी जो ऐसा करता था। इंसानों में रिश्ते बनाने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है, ठीक वैसे ही जैसे वे एक–दूसरे पर हावी होने की कोशिश करते हैं। लोगों ने हमेशा व्यक्तिगत तौर पर दूसरों को कंट्रोल करने की कोशिश की हैय अगर यह मुमकिन नहीं हुआ, तो उन्होंने ग्रुप्स के जरिए ऐसा करने की कोशिश की है, और अगर फिर भी यह मुमकिन नहीं हुआ, तो उन्होंने और भी बड़े और ज्यादा शक्तिशाली ग्रुप्स के जरिए ऐसा करने की कोशिश की है।[1] इसका नतीजा राजा और प्रजा, या शासित लोगों के बीच, साथ ही कमांडर और फॉलोअर के बीच एक रिश्ते के रूप में निकलता है। यह कितना सही है कि पुरुष और महिलाएं, खासकर वे जो प्रजा हैं और जिन पर

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i01.16

शासन किया जा रहा है, ऊपर बताए गए अलग–अलग तरह के रिश्तों में फंस जाते हैं, जबकि वे सभी आजाद और बराबर पैदा होते हैं? उन्हें ऐसा कॉन्ट्रैक्ट क्यों साइन करना चाहिए जो उन्हें जिंदगी भर नुकसान में रखे? उन्हें उसी निचले दर्जे पर उतरने के लिए मजबूर किया जाता है, न सिर्फ खुद बल्कि आने वाली पीढ़ियों को भी। भले ही यह मान लिया जाए कि भगवान ने सभी लोगों को बराबर नहीं बनाया, फिर भी ऐसे रिश्ते क्यों नहीं बनाए जा सकते और ऐसे कानून क्यों नहीं पास किए जा सकते जो यह गारंटी दें कि सबके साथ निष्पक्ष और बराबरी का व्यवहार हो? हर इंसान को समाज में आगे बढ़ने और अपनी पसंद के हिसाब से जिंदगी जीने का हक है। बुद्धि और सभ्यता की शुरुआत से ही इंसानी दिमाग ऐसे विचारों और तर्कों से परेशान रहा है। इंसानों में बेशक राज करने की जबरदस्त इच्छा होती है, लेकिन वे एक बेहतर, ज़्यादा सुखद जिंदगी के लिए भी कोशिश करते हैं जिसमें हर कोई तरक्की में योगदान दे। इंसान एक बेहतर जिंदगी का सबसे बड़ा जरिया हैं, फिर भी वे सुख–सुविधा पसंद करने वाले भी हैं। विचारकों और बुद्धिजीवियों ने लंबे समय से यह पता लगाने की कोशिश की है कि हर किसी से सबसे अच्छा काम कैसे लिया जाए और हर उपलब्ध इंसान का ज़्यादा से ज़्यादा इस्तेमाल कैसे किया जाए। कई बार, हर इंसान को आगे बढ़ने का बराबर मौका देने के लिए अच्छी शुरुआत की गई है, लेकिन किसी न किसी वजह से, राज करने की इच्छा हमेशा बीच में आ जाती है और सारे प्रयासों को वहीं वापस ले जाती है जहाँ से वे शुरू हुए थे। इस लिहाज से, इंसानी वर्चस्व और विकासध्तरक्की की जरूरत के बीच टकराव ने अक्सर न्याय, खासकर सामाजिक न्याय के मुद्दे को सामने लाया है।[2]

गांधीवादी विचारधारा में सामाजिक न्याय की अवधारणा

गांधीवादी विचारधारा में सामाजिक न्याय की अवधारणा पूरी तरह से कानूनी या संस्थागत व्यवस्थाओं के बजाय नैतिक, सैद्धांतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों में गहराई से निहित है। महात्मा गांधी के लिए, सामाजिक न्याय का मतलब जाति, वर्ग, लिंग या धर्म की परवाह किए बिना सभी मनुष्यों के बीच समानता, गरिमा और सद्भाव की प्राप्ति था। उनका मानना था कि अन्याय न केवल दमनकारी सामाजिक संरचनाओं से, बल्कि मानवीय व्यवहार में नैतिक पतन, लालच और हिंसा से भी उत्पन्न होता है। इसलिए, गांधी ने एक न्यायपूर्ण समाज की नींव के रूप में नैतिक परिवर्तन और आत्म–शुद्धि पर जोर दिया। उनके सामाजिक न्याय के विचार के केंद्र में सत्य और अहिंसा के सिद्धांत थे, जिन्हें वे न्याय के लिए किसी भी संघर्ष से अविभाज्य मानते थे। गांधी ने तर्क दिया कि अन्यायपूर्ण साधनों से कभी भी न्यायपूर्ण परिणाम नहीं मिल सकते, और इसलिए सामाजिक परिवर्तन जबरदस्ती या बल के बजाय शांतिपूर्ण तरीकों, अनुनय और नैतिक उदाहरण के माध्यम से प्राप्त किया जाना चाहिए।[3] उनके दृष्टिकोण में श्रम की गरिमा, सादा जीवन और समाज के सबसे कमजोर वर्गों के प्रति सम्मान पर जोर दिया गया था, जो उनके प्रसिद्ध ताबीज में परिलक्षित होता है, जिसमें व्यक्तियों से अपने कार्यों के प्रभाव पर विचार करने का आग्रह किया गया था। गांधी के सामाजिक न्याय की दृष्टि आर्थिक और सामाजिक संबंधों तक भी फैली हुई थी, जहाँ उन्होंने अनियंत्रित पूंजीवाद और हिंसक समाजवाद दोनों को अस्वीकार कर दिया, और इसके बजाय ट्रस्टीशिप की अवधारणा का प्रस्ताव रखा, जिसमें अमीरों से अपने संसाधनों का उपयोग समाज के कल्याण के लिए करने का आह्वान किया गया था। कुल मिलाकर, गांधीवादी सामाजिक न्याय एक समग्र दृष्टिकोण का

प्रतिनिधित्व करता है जो नैतिक जिम्मेदारी, सामाजिक समानता और मानवीय गरिमा को एकीकृत करता है, जिसका लक्ष्य शोषण और प्रभुत्व के बजाय सहयोग, करुणा और आपसी सम्मान पर आधारित समाज का निर्माण करना है।[4]

गांधी और जाति व्यवस्था

महात्मा गांधी के जाति व्यवस्था पर विचार उनकी सामाजिक सोच की चर्चाओं में एक जटिल और बहुत ज़्यादा बहस वाला स्थान रखते हैं। गांधी छुआछूत के कट्टर आलोचक थे, जिसे वे एक नैतिक अपराध और हिंदू समाज पर एक धब्बा मानते थे। उन्होंने अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा तथाकथित अछूतों के उत्थान के लिए समर्पित किया, जिन्हें वे हरिजन (भगवान के बच्चे) कहते थे, और उन्हें मुख्यधारा के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जीवन में शामिल करने के लिए अथक प्रयास किया। आंदोलनों, आश्रम की प्रथाओं, मंदिर प्रवेश अभियानों और अपने रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से, गांधी ने सामाजिक कलंक को दूर करने और सभी व्यक्तियों के लिए गरिमा, समानता और सम्मान को बढ़ावा देने की कोशिश की। हालाँकि, गांधी ने शुरू में वर्ण व्यवस्था को पूरी तरह से खारिज नहीं कियाय उन्होंने इसे जन्म पर आधारित एक कठोर पदानुक्रम के बजाय श्रम के कार्यात्मक विभाजन के रूप में देखा। उनका मानना था कि वर्ण का मूल विचार समय के साथ एक दमनकारी जाति संरचना में विकृत हो गया था और उन्होंने इसके हिंसक या अचानक उन्मूलन के बजाय नैतिक पुनरुत्थान के माध्यम से इसके सुधार की वकालत की।[5]

इस स्थिति ने कड़ी आलोचना को आकर्षित किया, विशेष रूप से बी. आर. अंबेडकर से, जिन्होंने तर्क दिया कि जाति व्यवस्था अपने आप में स्वाभाविक रूप से भेदभावपूर्ण थी और इसके संरचनात्मक आधारों को खत्म किए बिना इसमें सुधार नहीं किया जा सकता था। अंबेडकर ने गांधी के दृष्टिकोण को अत्यधिक आदर्शवादी और दलितों द्वारा सामना किए जाने वाले गहरी जड़ें जमाए सामाजिक और आर्थिक उत्पीड़न को दूर करने के लिए अपर्याप्त माना। दूसरी ओर, गांधी ने कहा कि सामाजिक परिवर्तन जातिवादी हिंदुओं के बीच हृदय परिवर्तन से शुरू होना चाहिए और जबरदस्ती के तरीके केवल विभाजन को गहरा करेंगे। इन बहसों के बावजूद, जातिगत भेदभाव के खिलाफ संघर्ष में गांधी का योगदान महत्वपूर्ण बना हुआ है। सामाजिक सद्भाव, नैतिक जिम्मेदारी और अहिंसा पर उनके लगातार जोर ने जातिगत अन्याय के मुद्दे को राष्ट्रीय चेतना में लाया और व्यापक सुधारों के लिए आधार तैयार किया। हालाँकि उनके दृष्टिकोण की सीमाएँ थीं, जाति व्यवस्था के साथ गांधी का जुड़ाव नैतिक साधनों और समावेशी सामाजिक सुधार के माध्यम से सामाजिक न्याय के प्रति उनकी व्यापक प्रतिबद्धता को दर्शाता है।[6]

गांधी के लैंगिक और सामाजिक समानता पर विचार

महात्मा गांधी के ''लैंगिक और सामाजिक समानता'' पर विचार सामाजिक न्याय के उनके बड़े विजन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थे, हालांकि वे जटिल और कभी–कभी विवादित भी रहे हैं। गांधी का मानना था कि पुरुष और महिलाएं नैतिक मूल्य और आध्यात्मिक क्षमता में बराबर हैं, और उन्होंने बाल विवाह, पर्दा प्रथा और महिलाओं पर लगाई गई सामाजिक पाबंदियों जैसी प्रथाओं का कड़ा विरोध किया। उन्होंने महिलाओं को घरेलू दायरे से बाहर निकलकर सार्वजनिक जीवन में

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i01.16

सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया, खासकर राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान, जहां महिलाओं ने उनके नेतृत्व में सविनय अवज्ञा, रचनात्मक कार्य और सामाजिक सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गांधी महिलाओं को अद्वितीय नैतिक शक्ति वाला मानते थे, खासकर धैर्य, करुणा और सहनशीलता जैसे गुणों को, जिन्हें वे अहिंसा के अभ्यास के लिए आवश्यक मानते थे। इस अर्थ में, उन्होंने महिलाओं को निष्क्रिय पीड़ितों के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के शक्तिशाली एजेंट के रूप में देखा।

साथ ही, लैंगिक समानता पर गांधी के विचार पूर्ण समानता के बजाय पुरुषों और महिलाओं के लिए पूरक भूमिकाओं में उनके विश्वास से आकार लेते थे। उन्होंने अक्सर परिवार और समाज में महिलाओं की जिम्मेदारियों पर जोर दिया, मातृत्व और घरेलू जीवन को नैतिक रूप से महत्वपूर्ण भूमिकाएँ माना। इस दृष्टिकोण की नारीवादी विद्वानों ने आलोचना की है, जो तर्क देते हैं कि गांधी का पारंपरिक भूमिकाओं पर जोर कभी–कभी पितृसत्तात्मक मानदंडों को मजबूत करता था और महिलाओं की पूर्ण स्वायत्तता को सीमित करता था। इन सीमाओं के बावजूद, लैंगिक समानता में गांधी के योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। महिलाओं की बड़े पैमाने पर राजनीतिक आंदोलनों में भागीदारी को वैध बनाकर और उन्हें दबाने वाली सामाजिक प्रथाओं को चुनौती देकर, उन्होंने भारतीय समाज में महिलाओं के लिए उपलब्ध सार्वजनिक स्थान का विस्तार करने में मदद की। इस प्रकार, लैंगिक समानता का उनका विजन नैतिक गरिमा, सामाजिक जिम्मेदारी और अहिंसा में निहित था, जिसका लक्ष्य केवल कानूनी समानता नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों का नैतिक परिवर्तन था।

गांधीवादी सोशल जस्टिस की आज के समय में अहमियत

गांधीवादी सोशल जस्टिस की आज के समय में अहमियत आज की दुनिया की मुश्किल चुनौतियों से निपटने के लिए इसके नैतिक, सबको साथ लेकर चलने वाले और इंसानी सोच वाले नजरिए में है। बढ़ती आर्थिक गैर–बराबरी, सामाजिक बहिष्कार, सांप्रदायिक ध्रुवीकरण और पर्यावरण की गिरावट वाले दौर में, गांधी का बराबरी, इज्जत और नैतिक जिम्मेदारी पर जोर, न्याय के पूरी तरह से सरकार पर आधारित या बाजार पर चलने वाले मॉडल का एक कीमती विकल्प देता है। गांधीवादी सोशल जस्टिस समाज के सबसे कमजोर तबके की भलाई पर जोर देता है, पॉलिसी बनाने वालों और नागरिकों को याद दिलाता है कि विकास और तरक्की का मूल्यांकन गरीबों, हाशिए पर पड़े लोगों और कमजोर लोगों पर उनके असर के आधार पर किया जाना चाहिए। अहिंसा और बातचीत पर उनके विचार आज के समाजों में खास तौर पर काम के हैं, जो पहचान की राजनीति, धार्मिक असहिष्णुता और सामाजिक बिखराव से जुड़े झगड़ों का सामना कर रहे हैं, क्योंकि वे शांतिपूर्ण साथ रहने और आपसी सम्मान को बढ़ावा देते हैं। इसके अलावा, गांधी का ट्रस्टीशिप का कॉन्सेप्ट कॉर्पोरेट नैतिकता, सामाजिक जिम्मेदारी और सस्टेनेबल डेवलपमेंट पर चर्चाओं में भी गूंजता रहता है, जो पैसे और ताकत का इस्तेमाल निजी फायदे के बजाय सबकी भलाई के लिए करने को बढ़ावा देता है।[7] जेंडर इक्वालिटी और सोशल इन्क्लूजन के मामले में, गांधीवादी सिद्धांत जबरदस्ती के बजाय नैतिक तरीकों से सम्मान, भागीदारी और एम्पावरमेंट का समर्थन करते हैं। हालांकि मॉडर्न सोशल जस्टिस के लिए मजबूत कानूनी और इंस्टीट्यूशनल फ्रेमवर्क की जरूरत है, लेकिन गांधीवादी सोच नैतिक बदलाव, नागरिक जिम्मेदारी और जमीनी स्तर पर कार्रवाई पर जोर देकर इन्हें पूरा करती है। इस

तरह, गांधीवादी सोशल जस्टिस आज भी एक नैतिक दिशासूचक के तौर पर बहुत जरूरी है जो समाज को इनक्लूसिव ग्रोथ, सोशल हार्मनी और सस्टेनेबल ह्यूमन डेवलपमेंट की ओर ले जाता है।[8]

आलोचनाएँ और विद्वानों की बहस

गांधीवादी सामाजिक न्याय को लेकर ''आलोचनाएँ और विद्वानों की बहसें'' बहुत बड़ी और कई तरह की रही हैं, जो गांधी के असर की गहराई और उनके नजरिए की कमियों, दोनों को दिखाती हैं। सबसे बड़ी आलोचनाओं में से एक ''बी. आर. अंबेडकर'' की है, जिन्होंने कहा कि गांधी का नैतिक सुधार और खास वर्गों के बीच दिल बदलने पर जोर, सामाजिक जुल्म के स्ट्रक्चरल और इंस्टीट्यूशनल नेचर को कम करके आँका गया, खासकर जाति के मामले में। अंबेडकर का कहना था कि दलितों के लिए सामाजिक न्याय के लिए कानूनी सुरक्षा, राजनीतिक रिप्रेजेंटेशन और जाति व्यवस्था को पूरी तरह खत्म करने की जरूरत है, न कि सिर्फ नैतिक दबाव से इसके सुधार की। इसी तरह, मार्क्सवादी विद्वानों ने गांधी के वर्ग संघर्ष और इंडस्ट्रियल मॉडर्निटी को नकारने की आलोचना की है, और उनके ट्रस्टीशिप के कॉन्सेप्ट को आइडियलिस्टिक और कैपिटलिस्ट सिस्टम में आर्थिक शोषण को सुलझाने के लिए काफी नहीं माना है। फेमिनिस्ट स्कॉलर ने जेंडर पर गांधी के विचारों की भी आलोचना की है, यह बताते हुए कि उन्होंने पब्लिक लाइफ में महिलाओं की भागीदारी का समर्थन किया, लेकिन पारंपरिक भूमिकाओं और नैतिक गुणों पर उनके जोर ने अक्सर पुरुष–प्रधान नियमों को मजबूत किया। साथ ही, गांधी के बचाव करने वाले तर्क देते हैं कि ये आलोचनाएँ उनके विचारों के खास नैतिक आधार को नजरअंदाज करती हैं। भीखू पारेख और राघवन अय्यर जैसे स्कॉलर सुझाव देते हैं कि गांधी का कभी भी यह इरादा नहीं था कि नैतिक सुधार इंस्टीट्यूशनल बदलाव की जगह ले, बल्कि उन्होंने सामाजिक नजरिए और रिश्तों को बदलकर इसे पूरा करने की कोशिश की। आज की बहसें आज के अन्याय को दूर करने में गांधी की प्रासंगिकता का आकलन करना जारी रखती हैं, उनके नैतिक यूनिवर्सलिज्म को स्ट्रक्चरल सुधारों की जरूरत के साथ बैलेंस करती हैं। ये स्कॉलरली चर्चाएँ गांधीवादी सामाजिक न्याय के स्थायी मूल्य और विवादित स्वभाव, दोनों को हाईलाइट करती हैं, और बिना सवाल किए स्वीकार करने के बजाय क्रिटिकल जांच के विषय के रूप में इसके महत्व को रेखांकित करती हैं।[9]

अध्ययन के उद्देश्य

- गांधीवादी दर्शन की प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।
- भारत में गांधी जी विचारों की वर्तमान राजनीति में उपयोगिता का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक
- अध्ययन करना।
- भारत में गांधी जी विचारों की वर्तमान सामाजिक में उपयोगिता का तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक
- अध्ययन करना।
- वैश्विक मंच पर गांधी जी के बढ़ते प्रभाव को इंगित करना।

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2026.v17i01.16

- विश्व स्तर पर गांधी जी के आदर्शों के द्वारा नया ज्ञान प्राप्त करना।

निष्कर्ष

यह रिव्यू पेपर इस नतीजे पर पहुँचता है कि महात्मा गांधी का सामाजिक न्याय का विजन बहुत ज़्यादा नैतिक और इंसान–केंद्रित था। हालाँकि संस्थागत असमानताओं को दूर करने में उनके तरीके की कुछ सीमाएँ हैं, लेकिन नैतिक बदलाव, गरिमा और अहिंसा पर उनका जोर न्याय पर होने वाली बहसों को आज भी प्रेरित करता है। गांधीवादी सामाजिक न्याय एक पूरक फ्रेमवर्क के तौर पर आज भी प्रासंगिक है जो समानता और मानवाधिकारों पर आज की चर्चाओं को और बेहतर बनाता है।

संदर्भ

1. रॉल्स, जॉन, (1971). न्याय का सिद्धांत. कैम्ब्रिजः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
2. मोटवानी, केवल, (1958). मनु धर्म शास्त्रः एक समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक अध्ययन.
3. गांधी, एम. के. (1958). महात्मा गांधी के कलेक्टेड वर्क्स. भारत सरकार.
4. गांधी, एम. के. (1938). हिंदू स्वराज. नवजीवन पब्लिशिंग हाउस.
5. अय्यर, आर. (1973). महात्मा गांधी के नैतिक और राजनीतिक विचार. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
6. अंबेडकर, बी. आर. (2014). जाति का विनाश. श्लोक.
7. पारेख, बी. (1989). गांधी की पॉलिटिकल फिलॉसफी. मैकमिलन.
8. डाल्टन, डी. (1993). महात्मा गांधीः अहिंसक शक्ति का काम. कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस.
9. क्रोकर, एच. ए., और स्मिथ, डी. वी. (2023). परिचयः आलोचना और बहस. मध्यकालीन साहित्य में पृ0सं0– 1–14.